16

पत्नी के परिवार का शेष प्रसंग

प्रतापगढ़ के संबंध में अपने सास-श्वसुर के परिवार का तथा अपने विवाह और द्विरागमन तक का विवरण मैं पिछले पृष्ठों में दे चुका हूँ। इस नाटक का उत्तरपक्ष यहाँ दे रहा हूँ। मैं पहले बता चुका हूँ कि गाँधीजी को मैंने अपने पिता के स्थान पर मान रक्खा था और उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर यथाशक्ति चलने का निश्चय कर रक्खा था। महात्मा गाँधी का एक सिद्धांत यह भी था कि विरोधी या दूसरा पक्ष कुछ भी करे, व्यक्ति को अपना उचित मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए। मुझे इस सिद्धांत पर चलने में आत्मिक संतोष और शांति तो मिली ही है, जीवन में लाभ ही लाभ मिला है। महाभारत का एक श्लोक भी इसके समर्थन में है –

मृदुमेव मृदुः हंति, मृदुः हंति च दारुणं
नासाध्यं मृदुना किंचित्, तेन तीक्ष्णतरो मृदुः

मेरी सास ने जैसी भूल एक बालक को गोद लेकर की थी, जिसका दुष्परिणाम उसे तो जीवनभर भोगना पड़ा ही, मुझे भी आजतक भोगना पड़ रहा है, वैसी ही दुबारा एक भूल फिर उसने मेरे साढू धनश्यामदासजी के पुत्र के पक्ष में अपनी सारी संपत्ति गुप्त रूप से वसीयत करके, कर दी। वह पुत्र कभी प्रतापगढ़ में दस-पाँच दिन भी अपनी नानी के पास नहीं रहा था। इस वसीयतनामे से उस बालक की माँ श्यामादेवी को भी जानबूझकर इसीलिए अनभिज्ञ रक्खा गया क्योंकि मेरी सास जानती थी कि श्यामादेवी किसी भी अवस्था में इसके लिए सहमत नहीं होगी। वह तो जानती है कि उसका कोई पुत्र प्रतापगढ़ में नहीं रहनेवाला है जबकि मेरा कोई न कोई पुत्र अपनी नानी की सेवा करने के लिए सदा वहाँ रहता था। ऐसी अवस्था में उसके पुत्र के द्वारा उसके पिता के वंश की रक्षा और प्रतापगढ़ की संपत्ति की सँभाल कैसे हो सकती थी! श्यामादेवी बड़ी ही सरल और साधु स्वभाव की महिला है। वह चाहती थी कि उसके पिता का स्टेट

सँभालने के लिए उसकी छोटी बहन अर्थात् मेरी पत्नी के उस पुत्र को गोद लिया जाय जो वहाँ रहता था। वह नहीं जानती थी कि उसके ज्येष्ठ पुत्र के पक्ष में फर्जी गोदनामे का उल्लेख करते हुए कोई वसीयतनामा लिखा जा चुका हैं। अपने उक्त पुत्र की कार-दुर्घटना में मृत्यु के बाद उक्त वसीयतनाो का उद्घाटन होने के पश्चात् उसने अपनी माँ की इस कार्य के लिए ब ड़ी भत्र्स्ना भी की। उसने उस वसीयतनामें को निरस्त कराके मेरे पुत्र कमलनयन के नाम से, जो प्रतापगढ़ में अपनी नानी के पास रहता था, नया वसीयतनामा करवाया। वह तो चाहती थी कि सारी संपत्ति कमलनयन के नाम से वसीयत कर दी जाय पर मेरे अड़ जाने पर चार बड़े-बड़े मकान उसे अपने पुत्रों के लिए अपने नाम लिखाने पड़े। इन दिनों श्यामाबाई कुछ अस्वस्थ रहती है परंतु आज भी मेरे पुत्रों के प्रति उसका प्रेम पहले जैसा है। वह उन्हें पुत्रवत् ही मानती है। अत्यंत दुख के साथ लिखना पड़ता है कि 19 जनवरी 08 को उसका देहांत हो गया।

बहन के प्रति प्रेम और स्वार्थ-त्याग का जैसा आदर्श श्यामाबाई ने दिखाया है उसकी तुलना नहीं हो सकती। मेरा तृतीय पुत्र अशोक, जो प्रारंभ से ही अपनी नानी के पास प्रतापगढ़ में रहकर पढ़ता आया था, उस समय भी अपनी नानी के पास वहीं प्रतापगढ़ में ही रहकर पढ़ रहा था, जब श्यामाबाई के पुत्र के नाम वसीयतनामा लिखा गया था। श्यामाबाई की प्रारंभ से ही यह इच्छा थी कि मेरी सास मेरे पुत्र अशोक को या मेरे किसी दूसरे पुत्र को दत्तक पुत्र के रूप में ले ले ताकि उसके पिता की संपत्ति, जो पहले के गोद लिये हुए लड़के की विधवा पत्नी से किये गये समझौते के आधार पर आधी रह गयी थी, फिर भी यथेष्ट थी, भविष्य में सुरक्षित रह सके। उस संपत्ति के साथ ही मेरी सास के हिस्से में आई हुई धर्मशाला और बाद में मेरी सास ने अपने नाम से जो एक जूनियर हाई स्कूल की स्थापना की थी, उनकी भी सँभाल रखनी थी। अपने पुत्र के नाम से किए गये दस्तावेज की जानकारी न होने के कारण वह बारबार अपनी माँ से मेरे पुत्र अशोक को, जो वहीं रहता था, गोद लेने का आग्रह करती रहती थी। उसकी माँ तो उसके आग्रह को टाल ही देती थी, मैं भी अस्वीकार कर देता था क्योंकि मुझे पता चल चुका था कि सारी संपत्ति श्यामाबाई के पुत्र के नाम कर दी गयी है। जब मेरे पुत्र अशोककुमार ने, जो अपनी नानी के पास रहता था, रुड़की के इंजीनियरिंग कालेज में प्रवेश

ले लिया तो मेरी सास अकेली रह गयी और अत्यंत दुःखी रहने लगी। मेरा द्वितीय पुत्र कमलनयन उन दिनों बी. एस-सी. का प्रथम वर्ष का विद्यार्थी था। यह जानते हुए भी कि मेरी पत्नी को या मेरे परिवार को एक भी पैसा नहीं मिलना है और प्रतापगढ़ की कुल विशाल संपति मेरे साढू के पुत्र के नाम से कर दी गयी है, मैंने अपने पुत्र कमलनयन की विज्ञान की पढ़ाई छुड़ाकर उसे प्रतापगढ़ भिजवा दिया। मैंने उससे कह दिया कि अधिकार छोड़ा जा सकता है, कर्तव्य नहीं। तुम्हारी नानी अकेलेपन की पीड़ा न झेले इसलिए तुम्हें उसकी सेवा के कर्तव्य से मुँह नहीं मोड़ना है चाहे इसके लिए कितना भी त्याग क्यों न करना पड़े। तुम्हें निरंतर अपनी नानी की सेवा करनी है और जब उसकी मृत्यु हो जाय तो बिना वहाँ की किसी भी वस्तु का स्पर्श किये, अपने गया के घर में लौट आना है। तुम्हें प्रतापगढ़ की संपत्ति की ओर आँख भी नहीं उठानी है। मैंने उसे तुलसीदासजी का वह सवैया कंठस्थ करा दिया, जिसकी अन्तिम पंक्ति है –

राजीवलोचन राम चले तजि बापकौ राज बटाऊ की नाईं।

मुझे अपनी सास के वसीयतनामे का पता नीचे दुकान के भागीदार श्री छोटेलाल द्वारा निम्न घटना द्वारा विदित हो गया था। मेरी सास एक बार बीमार पड़ी। दुकान में उसकी लाख से ऊपर पूँजी लगी हुई थी और दुकान की तिजोरी में उसके सत्तर-अस्सी भर के स्वर्णाभूषण रक्खे थे। उन्होंने छोटेलालजी से कह दिया कि यदि मेरा स्वर्गवास हो जाय तो इनमें से कुछ भी मेरी छोटी लड़की कृष्णा को नहीं मिलना चाहिए क्योंकि अपनी सारी संपत्ति मैंने अपने बड़े नाती, अपने बड़े दामाद धनश्यामजी के पुत्र, विजय के नाम वसीयत कर दी है। छोटेलालजी तथा अन्य भागीदारों को यह बात बहुत अनुचित लगी कि मेरी पत्नी कृष्णा तो मेरे साथ या अकेले सदा गया से आकर अपनी माँ की सँभाल करती थी और मेरा पुत्र अशोककुमार तो मेरी सास के पास प्रारंभ से ही रह रहा था, फिर भी उनको छोड़कर, जो बालक कभी दो दिन भी अपनी नानी के पास न तो रहा और न रहनेवाला था, उसीको सारी संपत्ति मिल जाय। एक बात और भी थी। मेरे साढू धनश्यामदासजी से सभी भागीदार भीतर से बहुत अप्रसन्न रहते थे क्योंकि धनश्यामदासजी ने उनका आधा हिस्सा रहते हुए भी उनके हिस्से के बंबई के व्यापार के लाखों रुपयों के मुनाफे से उन्हें एक पैसा भी नहीं लेने दिया था जब कि उन लोगों ने प्रतापगढ़ के

व्यापार से कमा-कमा कर उनके चौथाई हिस्से के एवज में लाखों रुपये उनको भेंट कर दिये थे। वे नहीं चाहते थे कि पूरी संपत्ति धनश्यामदासजी को मिल जाय पर वे विवश थे। छोटेलालजी से इस बात की जानकारी होने के बाद की बात है, एक बार मेरी साली श्यामाबाई कलकत्ते में बीमार पड़ी थी और मै भी सपत्नीक अपनी सास के साथ उनके पास था। मेरी सास के पास शहरी संपत्ति में करीब 14 मकान थे। मेरी साली ने इस आशंका से कि जैसे जमींदारी ले ली गयी है वैसे ही शहरी मकान भी सरकार ले लेगी और एक व्यक्ति के पास, अधिक मकान नहीं रहनी देगी, मेरी सास से कहा, 'माँ, मेरे तीन पुत्र और गुलाबजी के चार पुत्र हैं। दो-दो मकान प्रत्येक के नाम लिख देने चाहिए ताकि सरकार इन्हें नहीं ले सके।' उस बिचारी को यह ज्ञात नहीं था कि सभी चौदहों मकान ही नहीं, प्रतापगढ़ की कुल चल-अचल संपत्ति उसके ज्येष्ठ पुत्र के नाम से लिख दी गयी है जब कि मुझे छोटेलालजी से इस बात का पूरा पता लग चुका था। मेरी सास ने कहा, 'तू मेरी बनायी हुई योजना में क्यों दखल देना चाहती है।' मैं वहीं बैठा था। मुझसे नहीं रहा गया और मैंने कहा 'मुझे आपकी योजना का पता है। मेरे सभी लड़के विद्याध्ययन करके अपने पाँवों पर खड़े हो जायँगे। मैं, मेरी पत्नी या मेरे पुत्र आपकी संपत्ति का एक तिनका भी नहीं छूना चाहते हैं। मेरा एक पुत्र केवल आपकी सेवा के लिए आपके पास रहता है। आप निश्चिंत रहें।'

मेरी सास का मेरी पत्नी, अपनी छोटी पुत्री, कृष्णा को प्रतापगढ़ के स्वर्णाभूषणों में से या अन्य संपत्ति में से कुछ भी नहीं मिले, इस विचार का कारण यह नहीं था कि उसे अपनी छोटी पुत्री से कुछ कम प्यार था। इसका एक मात्र कारण यही था कि वह सोचती थी कि जब उसने सारी संपत्ति का वसीयतनामा अपने बड़े जामाता के पुत्र, अपने बड़े नाती के नाम से कर दिया है तो उस संपत्ति में से एक पैसा भी किसी दूसरे को देने का उसे अधिकार नहीं है। इसी न्याय-भावना के अपने आग्रह के कारण उसने चंद्रकला (अपनी पुत्रवधू) से मुकदमें के दौरान वकीलों के यह कहने पर कि चूंकि दुर्गाप्रसाद के नाम कोई गोदनामे का कागज नहीं है, आप उनको पोष्यपुत्र मानने से ही इन्कार कर दें, उसने स्पष्ट कह दिया था कि वह असत्य बोलकर मुकदमा नहीं जीतना चाहती।

उपर्युक्त बातों को लिखने का मेरा अभिप्राय यही है कि सारी बातें जानकर भी अपने प्रतापगढ़वासी पुत्र अशोक के रुड़की चले जाने पर मैंने

जो दूसरे पुत्र कमलनयन की विज्ञान की पढ़ाई छुड़ाकर उसे आर्ट्स की पढ़ाई करने और प्रतापगढ़ में रहकर अपनी सास की सेवा करने को भेज दिया तथा अपनी सास की रुग्णावस्था में उनकी सेवा के लिए अपनी पत्नी का भी महीनों-महीनों प्रतापगढ़ में रहने का जो स्वागत ही किया, इस त्यागवृत्ति से मुझे आत्मसंतोष तो मिला ही, मेरी सास का भी अंत तक मेरे प्रति प्रेमभाव बना रहा। जिस नाती को उन्होंने सारी संपत्ति लिखी थी उसकी एकाएक कार-दुर्घटना में मृत्यु हो गयी। मेरी साली को अपने पुत्र के मरने के बाद अपने पुत्र के पक्ष में किये गये उस वसीयतनामे का पता चला तो उसने उस वसीयतनामे को निरस्त कराते हुए नया वसीयतनामा मेरे पुत्र कमलनयन के नाम से अपनी माँ से करवाया। मैंने जब शहरी मकानों का प्रायः अर्धांश लेने को उसे राजी किया तभी मैंने शेष का वसीयतनामा अपने लड़के के नाम से करने के उसके प्रस्ताव को अपनी स्वीकृति दी।

सदा अपने कर्तव्य का पालन करते जाने से अच्छे या बुरे किसी भी परिणाम में मनुष्य अपना सौहार्द् और मानसिक शांति बनाये रखता है और उसे पछताना नहीं पड़ता है। उक्त विवरण देने का मेरा यही तात्पर्य है। इस संबंध में 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' के सूत्र का भी ध्यान आता है। परंतु यथार्थ में तो मैं अपने आचरण में यही ध्यान रखता आया हूँ कि महात्माजी की इस विषय में क्या नीति हो सकती है और अपने व्यवहार को उसके अनुसार ढालने की चेष्टा करता रहा हूँ। अपनी प्रारंभिक अवस्था में किये गये एक अवांछित कृत्य से भी, जिसका आगे वर्णन करूँगा, मैंने यह शिक्षा ग्रहण की थी।

मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि जीवन में मनुष्य जो कुछ भी पाता है उसमें भाग्य का बहुत बड़ा योगदान रहता है। भाग्य को आप दैव कह सकते हैं जो पूर्वजन्म में किये गये कर्म का ही निचोड़ है। परंतु मैं यह भी जानता हूँ कि अपने प्रत्यक्ष कर्मों का भी जीवन के निर्माण में बहुत बड़ा हाथ रहता है। इस संबंध में गीता के निर्णय को स्वीकार करने से ही भाग्य और कर्म के इस चिरंतन द्वंद्व का समाधान संभव हैं। यदि पूर्व जन्म को स्वीकार नहीं किया जाय और पूर्व-जन्मकृत कर्मों के फल का प्रतिफलन एवं प्रभाव इस जीवन में स्वीकार नहीं किया जाय तो प्राणियों में जन्म से ही सुख-दुःख, धनिक-निर्धन, तीव्रबुद्धि-मंदबुद्धि,

सुंदर-कुरूप आदि के जो विभेद हैं उनका औचित्य नहीं प्रमाणित किया जा सकता। यदि कहीं कोई ईश्वर या सृष्टि-नियंता है तो यह विभेद उसके क्रूर-विनोद, अन्याय या अकारण पक्षपात का परिचायक होगा जो बात किसी भी धर्म को या हमारी सहज बुद्धि को स्वीकार नहीं है।

यदि सारा सृष्टि-तंत्र बिना किसी व्यवस्थापक के या नियंता के चल रहा है और भाग्य के स्थान पर केवल अंधे की लाठी चल रही है तो नीति, धर्म, न्याय आदि के सारे मानव-मूल्य व्यर्थ हो जाते हैं। अकारण अंधे संयोग की बात भी कोई बुद्धिमान और सहृदय मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि सृष्टि में सूक्ष्म से सूक्ष्म अणु-परमाणु भी नियमों से बँधे हैं। गणित, भौतिकी, रसायन-शास्त्र आदि, के नियमों को ढूँढ-ढूँढकर ही सभ्यता निरंतर प्रगति कर रही है। विद्युत् या आकर्षण की सार्वभौम शक्तियाँ भी अपने नियमों से बँधी हैं। दूर ब्रह्मांड में भी, जहाँ तक मनुष्य देख पा रहा है, उन नियमों का पालन उसी कठोरता एवं नियमितता से हो रहा है। अभी पिछले दिनो 8 करोड़ मील पर, आनेवाल उल्कापिंड से धरती से भेजे गये उपग्रह को टकराने से बचाया गया और उसे उतनी दूरी पर यहाँ से प्रेषित संकेतों द्वारा तीन बार सही निशाने पर मोड़ दिया गया। क्या इससे प्रमाणित नहीं होता है कि सुदूर ब्रह्मांड़ मे भी वे नियम मान्य हैं। अणु में घूमनेवाले एलेक्ट्रोन प्रोटोनों की ऐसी सूक्ष्म व्यवस्था के पीछे कोई व्यवस्थापक नहीं हो यह बात समझ में नहीं आती। जिस प्रकार भौतिक जगत में अनंत अकाट्य नियमों का जाल बिछा है उसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में भी उसके अपने नियम अवश्य होंगे। पुनर्जन्म का सिद्धांत या नियम आध्यात्मिक जगत का एक ऐसा ही नियम है जिसे आदि काल में भारतीय मनीषियों ने ढूँढ़ निकाला था।

पुनर्जन्म से मेरा तात्पर्य है कि उद्भव, स्थिति, संहार का जो चक्र सारी जड़ सृष्टि में दिखाई देता है वह जन्म और मृत्यु के चक्र के रूप में आध्यात्मिक जगत में भी अनुभव किया जा सकता है। आध्यात्मिक व्यवस्था या नियमों की एक झाँकी लोकहितार्थ स्वयं भगवान ने गीता में दे दी है। समय-समय पर उस व्यवस्था की व्याख्या ऋषियों ने भी की है जिनमें आधुनिक काल में महात्मा गाँधी का अहिंसा का सिद्धांत भी एक है। यद्यपि वह प्राचीन नियमों की ही व्याख्या है परंतु जीवन की व्यावहारिक आचार-संहिता के

रूप में उसे ग्रहण करना सुगम नहीं था जो महात्मा गाँधी ने कर दिखाया। प्रत्येक युग चिरंतन सत्यों को भी युगानुकूल अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करता है।

उपर्युक्त घटना से मैं यही बताना चाहता हूँ कि मेरे परिवार में जो तनिक भी कटुता नहीं आ पायी और बाद में मेरी सास को भी अपने कर्तव्य का जो बोध हुआ, उसका एक मात्र कारण वसीयतनामे द्वारा प्रतापगढ़ की संपत्ति से वंचित किये जाने की जानकारी हो जाने पर भी उसके प्रति मेरी पत्नी का और मेरा प्रेमपूर्ण व्यवहार ही था। मेरे पुत्र का भाग्य तो उसे वैज्ञानिक बनाने के स्थान पर प्रतापगढ़ की संपत्ति के एक भाग का अधिकारी बनाने में सहायक था ही, उसका, मेरा तथा मेरी पत्नी के प्रत्यक्ष आचरण का भी इसमें कम योगदान नहीं था। भाग्य पर तो हमारा नियंत्रण नहीं है, न हम उसे जान ही सकते हैं, हमारे हाथ में तो हमारा प्रत्यक्ष कर्म या आचरण ही है। अतः हम उसे ही सँभाल सकते हैं और दैव की चिंता दैव पर छोड़कर हमें उसीको ठीक रखना है। यदि हम अपने कर्तव्य का पालन करते रहेंगे तो परिणाम कुछ भी हो हमारी मानसिक शांति और संतोष तो कोई हम से छीन नहीं सकेगा।